काशी में पुष्टिमार्गीय वैष्णव परम्परा

प्रो. ब्रजरत्न दास गुप्त

अधिकांश आचार्य दक्षिण से आये और उन्होंने उत्तर को अपनी कार्यस्थली बनायी। इसी क्रम में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी का जो प्रादुर्भाव हुआ, काशी से उनके माता पिता यवनों के उत्पात के कारण पलायन कर रहे थे और मार्ग में चम्पारण्य के पास (म.प्र. में रायपुर के पास) आठ महीने के अन्तराल पर उनका जन्म हुआ। जन्म के समय उनके मुख से कोई आवाज नहीं आ रही थी, कोई हलचल नहीं थी। इसलिए उनके माता-पिता ने वहीं एक पेड़ के छांव में उनको छोड़कर आगे प्रस्थान किया। आगे जाने पर उनको इस प्रकार का आध्यात्मिक सन्देश मिला कि जिस बालक को वह वहाँ छोड़कर आये हैं, वह जीवित है वे वापस आये। उस समय तक उनको एक और दूसरा सन्देश भी मिल गया था कि काशी में जो यवनों का उत्पात था, वह कुछ ठीक हो गया था, उसमें कुछ शान्ति आ गयी थी और उन्होंने फिर उस बालक को लेकर पुन: काशी भ्रमण किया। इस प्रकार काशी में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी का जीवन आरम्भ होता है। काशी की जो दो बैठकें हैं, एक जतनवर पर जहाँ महाप्रभु बल्लभाचार्य जी का उपनयन संस्कार आदि हुआ था और दूसरी जो बैठक है पंचगंगा घाट पर, वहाँ उनका विवाह हुआ था। वह दक्षिण से आये जरूर परन्तु उनका जीवन यहीं से आरम्भ हुआ, महाप्रभु बल्लभाचार्य जी का विशेष रूप से और यहीं पर उनकी शिक्षा दीक्षा हुई और उस शिक्षा दीक्षा के पश्चात् उन्होंने जिस मत का प्रवर्तन किया, उस मत को शुद्धाद्वैत दर्शन के नाम से जाना जाता है। आचार्य शंकर के समय जिस प्रकार से उन्होंने बौद्ध लोगों के प्रवाह को रोकते हुए, वैदिक धर्म की पुर्नस्थापना करते हुए जो एक वैदिक धर्म दिया, उसमें जो संकल्पना दी थी, कि केवल ब्रह्म सत्य है, एक ब्रह्म ही है और बाकी सब मिथ्या है, इस प्रकार की एक भावना थी। कालान्तर में उस समय की वह भावना सही रही होगी। उसके माध्यम से उन्होंने देश के चारों कोनों पर चार मठ स्थापित किये और पूरे देश का कई बार उन्होंने भ्रमण किया और भ्रमण करते हुए उन्होंने पुन: हिन्दू संस्कृति की स्थापना की उसके आधार पर हमारी हिन्दू संस्कृति पुन: परिपुष्ट हुई परन्तु कालान्तर में न मालूम कहाँ से कुछ इस प्रकार का भाव उत्पन्न हुआ कि यदि मोक्ष प्राप्त करना है तो संन्यास ग्रहण करना पड़ेगा, इस संसार से विरत होना पड़ेगा। इस प्रकार की भावना के कारण हमारे समाज का गृहस्थ वर्ग जिसे हम समाज की नींव मानते हैं उसमें कुछ शिथिलता और उदासीनता का भाव उत्पन्न हुआ। निश्चित रूप से उससे हमारे समाज में कुछ कमजोरी आई।

यवनों का काल था हमारे देश की सारी कला, संस्कृति एवं विद्वानों के विचार वह सब दिल्ली के बादशाहों के ओर जा रहे थे, सारा प्रवाह जो ईश्वर के प्रति होना चाहिए वह सारा प्रवाह उधर जा रहा था। ऐसे समय में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने इस गृहस्थ जीवन को पुष्ट करने के लिये एक नये दर्शन का प्रस्ताव सामने रखा जिसको उन्होंने शुद्धाद्वैत कहा। मुख्य रूप से शुद्धाद्वैत में यह माना गया कि जीव ब्रह्म का ही स्फुलिंग है जीव और ब्रह्म के बीच सारा यह कार्य सम्पादित हो रहा है, वह इस जगत् में हो रहा है। ब्रह्म से उत्पन्न हुआ यह जीव और वह उसकी कार्यस्थली, उसकी लीला का केन्द्र स्थान, वातावरण, यह जगत् असत्य नहीं हो सकता। जीव भी सत्य है, जगत् भी सत्य है और परब्रह्म वह भी सत्य है। इसलिए उन्होंने एक शुद्ध अद्वैत की बात कर ब्रह्मवाद की स्थापना की। व्यावहारिक धरातल पर इसे पुष्टिमार्ग का नाम दिया, इस सम्प्रदाय का। जहाँ और सम्प्रदायों में कुछ काम करके भगवान् से कुछ प्राप्त करने की बात थी, उससे थोड़ा अलग होते हुए पुष्टि सम्प्रदाय में उन्होंने भगवान् के अनुग्रह को ही सर्वोपरि माना। उन्होंने कहा कि हमें भगवान् का अनुग्रह प्राप्त करना है। उस अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए साधना करने की आवश्यकता नहीं है। हमारी दृष्टि केवल उनकी ओर उन्मुख हो जाय और वह चाहेंगे, तब उनका अनुग्रह प्राप्त होगा। एक विलक्षण बात इस पुष्टि सम्प्रदाय के द्वारा आयी कि यहाँ साधन और साध्य एक हो गये। जहाँ लोगों के मन में मुक्ति की कल्पना थी, वहाँ उन्होंने इस पुष्टि सम्प्रदाय की स्थापना की जिसमें मुक्ति की कोई कल्पना नहीं है। केवल भगवान् का अनुग्रह प्राप्त करना है। वह अनुग्रह

हम किस प्रकार से प्राप्त करेंगे, उसकी थोड़ी सी विधि उन्होंने बतायी। और इस विधि में उन्होंने सेवा, सत्संग और स्मरण इस तीन बातों का समावेश किया।

ऐसा कहा जाता है कि महाप्रभु जब वृन्दावन में चल रहे थे, उनके मन में जो स्वाभाविक है कि यह जीव स्वभाव से दुष्ट है। वह इन्द्रियों के जाल में पड़कर जो उसको भगवान् की ओर आमुख होना चाहिए, वह उनसे विमुख हो जाता है और यही उसकी दुष्टता का कारण है। उनके मन में बड़ी ललक थी कि किस प्रकार इस जीव को हम इसकी दुष्टता से दूर कर पायें और वर्णन आता है कि उसी वृन्दावन में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी को श्रीनाथ जी का साक्षात् दर्शन हुआ और उन्होंने उनको प्रेरणा दी कि इस जीव को तुम हमारे सम्मुख उपस्थित करो। इस जीव को हमसे सम्बन्ध करा दो। उसको उन्होंने शब्द दिये ब्रह्म सम्बन्ध। इस जीव का हमसे जब सम्बन्ध हो जायेगा तो उसकी सारी दुष्टता समाप्त हो जाएगी। और उस जीव और मुझमें कोई अन्तर नहीं रह जायेगा। फिर इसका भी उन्होंने एक विधान बताया कि यह ब्रह्म सम्बन्ध कैसे कराया जायेगा। जीव को ब्रह्म सम्बन्ध का मन्त्र दो और ब्रह्म सम्बन्ध का मन्त्र देने के पश्चात् वह अपना आत्म निवेदन करेगा और जिस क्षण वह आत्म निवेदन करेगा, वह सारा का सारा, उसका अस्तित्व उस परब्रह्म में समाहित हो जायेगा। उसका अपना कुछ नहीं बच पायेगा। इस प्रकार वह जीव उस परब्रह्म का अनुग्रह प्राप्त करते हुए उसमें लीन हो जायेगा। महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने आगे चलकर इसका विस्तार किया। जब महाप्रभु जा रहे थे तो मार्ग में उन्होंने सूरदास से साक्षात्कार किया। देखा-एक अकिंचन ब्राह्मण अपने आप को कोस रहा है। उन्होंने उसके अन्दर छिपी हुई उस अद्भुत काव्य प्रतिभा को देखा और उसको चेताया कि एक तो तुम पहले ही अन्धे हो और दूसरे अपने आपको कोस रहे हो। भगवान् से प्राप्त हुआ यह जो तुम्हारा शरीर है यह इस प्रकार से अपने आपको कोसने के लिए नहीं है। तुम्हारे अन्दर जो प्रतिभा है, इस प्रतिभा का उपयोग करके तुम भगवान् के पद गाओ। और ऐसा कहते हैं कि महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने श्रीमद्भागवत की पूरी कथा सूरदास जी को सुनायी। करीब करीब 35 सौ पद संकलित हैं जिन्हें सीताराम चतुर्वेदी ने परिष्कार करके कहीं छपवाया भी है। लेकिन इसमें, जैसी आज भी एक बात आयी कि यह एक लाख, सवा लाख, यह कोई निश्चित संख्या नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने अगणित पद गाये हैं। जिस कार्य को महाप्रभु बल्लभाचार्य जी करना चाहते थे उस कार्य को प्रतीक रूप में सूरदास ने सूरसागर के माध्यम से आगे विस्तार किया। अनेक कवियों को उन्होंने प्रेरणा दी। अष्टछाप कवि हुए काशी में।

जन्म के बाद जब उन्होंने दो-तीन बार भारत की परिक्रमा की और किस प्रकार से शास्त्रार्थ करके उन्होंने अपने शुद्धाद्वैत की स्थापना की। उसके बाद के कालखण्ड में उसकी प्रगति हुई। पौने दो सौ वर्ष पहले काशी में गोपाल मन्दिर की स्थापना हुई। काशी में गोपाल मन्दिर की स्थापना के पश्चात् यह पुष्टि सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय का जो कार्यक्षेत्र है, वह विकसित हुआ। इसी गोपाल मन्दिर के इर्द-गिर्द पक्के महाल में अधिकांश गुजराती, मारवाड़ी, अग्रवाल परिवार के लोग थे, उनके बीच में यह गोपाल मन्दिर का केन्द्र बनाकर यह पुष्टि सेवा का भाव बड़ी दृढ़ता से और भरा गया और अष्टयाम सेवा के जो कार्यक्रम थे, उसके माध्यम से पुष्ट किया गया। समय-समय पर त्योहारों के अवसर पर चाहे वह दीपावली के समय और ग्रहराज पूजन की बात हो, चाहे वह अन्य प्रकार के जो उत्सव हैं, उसमें विविध प्रकार की झांकियों का हो, चाहे श्रावण मास में हिण्डोले के प्रसंग हों इत्यादि अनेक प्रकार से इसका विस्तार हुआ। नित्य मंगला से लेकर शयन तक दर्शन का जो कार्यक्रम था उसके माध्यम से गोपाल मंदिर के इर्द-गिर्द यह जो मध्यवर्गीय समाज था उसने पुष्टि भावना को जीवन में उतारने का प्रयत्न किया। परिवारों के घर के अन्दर और गोपाल कृष्ण जो मूर्तियाँ स्थापित हुई, छोटे छोटे मन्दिर हुए और जिस प्रकार की अष्टयाम सेवा गोपाल मन्दिर के माध्यम से हो रही थी, उसी प्रकार के घर घर के अन्दर इस प्रकार की सेवा का क्रम हुआ। उन घरों में भी इस प्रकार के उत्सव कुछ के सीमित साधन होंगे, कुछ के विस्तृत साधन होंगे, कुछ सम्पन्न, कुछ विपन्न, लेकिन अपनी सामार्थ्य के अनुसार उत्सव घर-घर में होने लगे। विशेष रूप से अन्नकूट के दिन कई घरों में अन्नकूट के दर्शन होते हैं। कई बार तो हमारे जैसे लोगों के लिए थोड़ी सी कठिनाई हो जाती है कि अन्नकूट का प्रसाद कहाँ पायें। कभी हमारे अपने घर में भी सेवा है। हमलोग थोड़ा सा आगे पीछे कर लेते हैं जिसमें कि असुविधा न हो परन्तु यह एक पक्ष था।

बहुत काल बाद सेवा सत्संग और स्मरण ये तीन चीजें जो थीं उसमें सेवा पक्ष बहुत पुष्ट हुआ। सत्संग के रूप में भी कुछ पुष्ट हुआ लेकिन स्मरण के रूप में बहुत सीमित था। सीमित इसलिए था कि महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने 'श्रीकृष्ण: शरणम् मम' का मंत्र दिया।

अधिकांश लोगों के मन में इस प्रकार का विचार था कि यह गोपनीय मन्त्र है। लोग बैठकर एकान्त में माला के द्वारा इस मंत्र का जाप करते थे। परन्तु इसमें एक विलक्षण प्रकार की परिवर्तन की स्थिति आयी। उस गोपाल मन्दिर के महाराज मुरली मनोहर जी की पुत्री कृष्णप्रिया बेटी जी महाराज ने आज से करीब 50 वर्ष पूर्व महाप्रभु के इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने शुद्धाद्वैत जप यज्ञ समिति की स्थापना की। गीता में कहा गया है कि यज्ञों में सबसे उत्तम है। उन्होंने जब शुद्धाद्वैत यज्ञ की स्थापना की तो उनके मन में कई बातें थीं। वह चाहती थीं कि समाज धर्म के दायरे में सीमित न रह जाय। इसका सामाजिक, सांस्कृतिक और कलात्मक, आध्यात्मिक इन तीनों दिशाओं में प्रभाव हो किन्तु धुरी महाप्रभु बल्लभाचार्य जी का वह शुद्धाद्वैत दर्शन पुष्टिमार्ग रहे। तो उन्होंने सबसे पहले घोषणा की कि जिस दिन उन्होंने तय किया उससे चार माह पश्चात् शुद्धाद्वैत जप यज्ञ समिति की स्थापना होगी और घर-घर के अन्दर अष्टाक्षर मन्त्र का जप हो। और उन्होंने एक लक्ष्य रखा कि चार महीने के अन्दर मंत्र का आठ करोड़ जाप हो। चार महीने के पश्चात् जब आकलन किया गया तो बत्तीस करोड़ जाप इस मन्त्र के हो चुके थे और बत्तीस करोड़ मन्त्रों की आधारशिला पर उन्होंने यह शुद्धाद्वैत जप यज्ञ समिति की स्थापना था, उसको उन्होंने थोड़ा वैचारिक स्तर पर आगे बढ़ाया। उन्होंने सत्संग को आगे बढ़ाया। सत्संग के साथ साथ एक अनोखी बात हुई कि यहाँ जो कार्यक्रम होते थे उनमें केवल वल्लभ सम्प्रदाय के ही आचार्यों को ही बुलाया जाता था। परन्तु कृष्णप्रिया बेटी जी महाराज ने जब शुद्धाद्वैत जप यज्ञ समिति की स्थापना की तो उसमें उन्होंने अन्य आचार्यों को भी निमन्त्रित किया और उनके माध्यम से हमारे वैदिक वाङ्मय की भी एक झलक सारे वैष्णवों को प्राप्त हो और उनका दायरा थोड़ा विस्तृत हो इस प्रकार का उन्होंने प्रयत्न किया। इस क्रम में उन्होंने उस मंच पर उनके जाने के बाद भी कुछ कार्यक्रम शरद बल्लभा बेटी जी के द्वारा अभी भी चल रहा है। यहाँ तक कि शंकराचार्य जैसे लोग उपस्थित हुए। निरंजन देव तीर्थ को और भी कई लोगों को हमने उस प्रांगण में सुना है। एक प्रकार से वह जो संकोच था कि यह हमारा बल्लभ सम्प्रदाय है, यह हमारा शंकर सम्प्रदाय है, इन दोनों का आपस में सामंजस्य नहीं हो सकता। एक मर्यादा की वह बात थी। कितनी कठिन स्थिति थी, उनमें कौन स्थान ग्रहण करे, कौन छोटा है, कौन बड़ा है, एक प्रकार का बड़ा विभेद था कि अगर उस प्रांगण में बल्लभ वंशज उपस्थित हैं और शंकराचार्य जी को थोड़ा नीचे स्थान दिया जाय। परन्तु इस परम्परा से हटकर बेटी जी महाराज ने यथायोग्य ऊँचा स्थान देकर उनका सम्मान किया और जिस प्रकार से भी हमारे हिन्दू संस्कृति को पोषण मिल सकता है उसे देने का प्रयत्न किया।

एक दूसरी बात उन्होंने की कि यह जो गोपनीय मंत्र था, श्रीकृष्ण शरणम् करके 24 घंटे तक के सतत संकीर्तन सामूहिक रूप से होने लगे। इसमें बड़ा विवाद भी हुआ। कई गोस्वामी महाराजों ने इस पर टिप्पणी भी की। लेकिन उन्होंने इसको आगे बढ़ाया। तो दूसरा पक्ष सामने आया, वह जो स्मरण की चीज थी, जिसकी थोड़ी सी कमी रह गयी थी, उस कमी को उन्होंने दूर किया। इस प्रकार से सेवा के साथ स्मरण को भी उन्होंने प्रोत्साहित किया। जहाँ गोपाल मन्दिर सेवा के लिए प्रमुख था वहीं उन्हीं के सामने उनकी संतति कृष्णप्रिया जी, शरद वल्लभा बेटी जी महाराज ने जो गीता भवन बनाया उसमें हर प्रकार के कार्यक्रम करते हुए सेवा, सत्संग और सुमिरन इन तीनों का उन्होंने समावेश किया। फिर महिलाओं की शिक्षा के लिए उन्होंने प्रयत्न किया। समाज की जो खराब स्थिति उन्होंने देखा उसकी जड़ है स्त्री की शिक्षा न होना। इसलिए उन्होंने स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। बल्लभ विद्यापीठ की स्थापना की ओर अपने यहाँ के कार्यक्रमों में भी वह छोटे से बच्चे से लेकर बड़े, वृद्ध, अबाल सबका उन्होंने समावेश कराए, अलग अलग कार्यक्रम कराए। सामाजिक कार्य के लिए भी प्रेरणा दी। इस प्रकार अत्यन्त आधुनिक युग में अभी तक यहाँ जो पुष्टि सम्प्रदाय, महाप्रभु बल्लभाचार्य के द्वारा स्थापित किया गया, उसका जो प्रवाह चला है वह काशी में पुष्टि वैष्णवों के माध्यम से प्रवाहमान है और उसके माध्यम से काशी की परम्परा, काशी के वैविध्य को एक विशेष योगदान इस वैष्णव पुष्टि परम्परा द्वारा मिला है।